THE TIMES OF INDIA

Date:23-03-23

OOP Down Plan

Rajasthan's Right to Heath Bill rightly targets reduction of huge out-of-pocket healthcare spend

TOI Editorials

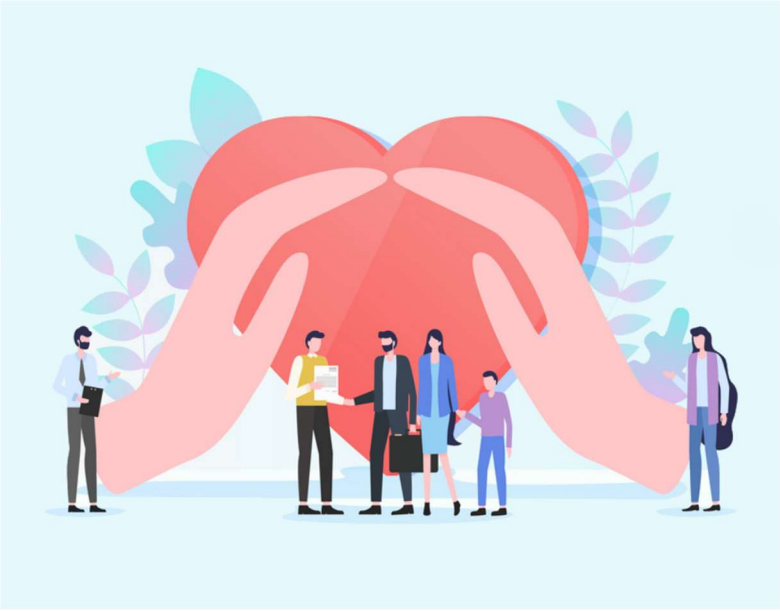

GoI's PMJAY is the world's largest health insurance scheme. It covers around 108 million families. As it came after many states instituted their own health insurance schemes, the coverage by government-funded health insurance schemes in India is wider. It spans about 148 million families. In a state such as Rajasthan, the state government's health insurance coverage exceeds PMJAY – 7. 5 million of the 13. 4 million insured families are covered wholly by the state government. Given this extent of insurance coverage, why did the Rajasthan assembly legislate a Right to Health Bill this week?

The answer lies in the large quantum of out-of-pocket expenditure that characterises Indian healthcare spending. According to WHO, India's OOP in 2019 was about 55%, way above the global average of 18%. It's this gap in healthcare coverage that the state's health act seeks to address. It's pragmatic as it seeks to progressively reduce OOP. Consequently, the scope of legislation, which is limited to "residents" of Rajasthan, covers even diagnostic tests. Private healthcare providers who fall within the scope of this legislation will be reimbursed by the state government. Bringing them within its ambit was essential given their spatial spread. However, many details of this scheme, including the reimbursement process, will be fleshed out in the rules the government is expected to introduce.

Doctors in Rajasthan are unhappy with the bill. But they don't have a convincing case. Through its iterations in the legislative process, the IMA has been given representation in the state health authority, which will function as a grievance redressal body. Eventually, timely reimbursement by the state will influence the efficacy of this legislation. On balance, it's a positive effort as healthcare shocks often push economically vulnerable families back into poverty. Implemented well, this legislation can check it.

दैनिक भास्कर

Date:23-03-23

खुशी के इंडेक्स में हमारी स्थिति पर चिंतन हो

संपादकीय

कोरोना- पूर्व के तीन साल के मुकाबले महामारी के बाद लोगों में एक-दूसरे के प्रति मदद की भावना 25% बढ़ी है। हैप्पीनेस इंडेक्स में इस वर्ष यह जानने की भी कोशिश हुई कि लोगों में महामारी के बाद सोच और जीवन के प्रति क्या बदलाव आया है। वर्ष 2021 में लोगों में उदारता न केवल बढ़ी बल्कि 2022 में यह और ज्यादा हुई। जब कोरोना सगे-सम्बन्धियों और परिजनों का जीवन लील रहा था, लोगों में सकारात्मक भावनाएं खासकर सामाजिक सहयोग का भाव, नकारात्मक सोच के मुकाबले दूना हुआ। इस रिपोर्ट का निष्कर्ष बताता है कि मानव में किसी भी झंझावात से लड़ने की क्षमता उसे अन्य जीवों से अलग करती है। इस बार इंडेक्स में आकलन प्रति व्यक्ति आय के अलावा पांच अन्य पैमानों पर किया गया, जिसमें भ्रष्टाचार के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया भी है। यह भी पता चला कि प्रति व्यक्ति आय और व्यक्ति की खुशी का कोई सीधा रिश्ता नहीं है, हालांकि हैप्पीनेस इंडेक्स में ऊपर के सभी 20 देश अपेक्षाकृत बेहतर आर्थिक स्थिति वाले हैं। लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि भारत दुनिया में जीडीपी में पांचवें स्थान पर रहते हुए भी इस इंडेक्स में 126वें स्थान पर है। हम सकारात्मक भाव रखते हुए कह सकते हैं कि पिछले साल देश 136वें स्थान पर था। लेकिन तब कुल 150 देशों की रैंकिंग की गई थी। हमें चिंतन करने की जरूरत है।

Date:23-03-23

भ्रष्टाचार का मुद्दा आज कितना मायने रखता है ?

आज देश के मतदाताओं पर सबसे ज्यादा प्रभाव राष्ट्रवाद के मसले का पड़ रहा है

संजय कुमार, (प्रोफेसर व राजनीतिक टिप्पणीकार)

हम भारतीय राजनीति में एक दुर्लभ क्षण के गवाह बन रहे हैं, जिसमें सत्तारूढ़ पार्टी ने संसद में गतिरोध उत्पन्न कर रखा है। वह राहुल गांधी से मांग कर रही है कि वे लंदन में कहे गए अपने कथित आपत्तिजनक कथनों के लिए क्षमायाचना करें। जब तक राहुल माफी नहीं मांगेंगे, संसद नहीं चलने दी जाएगी। दूसरी तरफ विपक्षी दल संसद के बाहर आंदोलन कर रहे हैं और अदाणी मामले पर संयुक्त संसदीय समिति के गठन की मांग कर रहे हैं। उनका आरोप है कि प्रधानमंत्री के द्वारा गौतम अदाणी को अत्यधिक लाभ पहुंचाए गए, जिनके चलते एलआईसी जैसी कम्पनियों को खासा नुकसान हुआ है। वहीं केंद्रीय एजेंसियां विभिन्न विपक्षी पार्टियों के नेताओं पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाकर उनसे तफ्तीश

कर रही हैं और उन्हें गिरफ्तार कर रही हैं। एजेंसियों के द्वारा जितने नेताओं से सवाल पूछे गए हैं, उन पर छापे मारे गए हैं या उन्हें जेल भेजा गया है, उनकी सूची बहुत लम्बी है। इसमें नवीनतम नाम दिल्ली के उपमुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया का है। विपक्षी दल लोगों को यह बताने की कोशिश कर रहे हैं कि मौजूदा सरकार के द्वारा खासा भ्रष्टाचार किया जा रहा है, जिस पर अच्छी तरह से जांच-पड़ताल के लिए संयुक्त संसदीय समिति या जेपीसी का गठन करना जरूरी हो गया है। केंद्रीय एजेंसियों का इस्तेमाल करके सरकार भी उलटे यह दिखाना चाह रही है कि खुद विपक्षी नेता भ्रष्टाचार में डूबे हुए हैं। लब्बोलुआब यह है कि आज भ्रष्टाचार का मुद्दा राजनीति में गर्म बना हुआ है, इसके बावजूद क्या यह 2024 के चुनाव परिणामों को प्रभावित करने वाला मसला बन सकता है? और अगर ऐसा होता है तो इसका सबसे ज्यादा फायदा किसे मिलेगा?

अतीत में कम से कम दो बार ऐसा हुआ है कि भ्रष्टाचार के मसले पर केंद्र में सरकार बदल गई है। लेकिन बीते एक दशक में देश में राजनीति का जो रंग-ढंग रहा है, उसमें अब विश्वास करना मुश्किल लगता है कि भ्रष्टाचार एक ऐसा केंद्रीय महत्व का मुद्दा हो सकता है, जो 2024 में नरेंद्र मोदी को सत्ता से बेदखल कर सकता है। इसके तीन कारण मुझे सूझते हैं। पहला तो यह कि राजनीति अब बदल गई है। मतदाता अब राष्ट्रवाद और नेतृत्वशीलता के मुद्दे पर ज्यादा लामबंद होते हैं और यह बात नरेंद्र मोदी के पक्ष में जाती है। दूसरे, अगर लोगों में भाजपा के कथित भ्रष्टाचार या अदाणी से कथित सांठगांठ को लेकर बेचैनी की स्थिति निर्मित हुई भी तो उनमें विपक्षी पार्टियों का ट्रैक रिकॉर्ड देखकर उनसे बेहतर प्रदर्शन की उम्मीद नहीं जगती। उन्हें नरेंद्र मोदी ही किसी भी विपक्षी नेता की तुलना में ज्यादा भरोसेमंद लगते हैं। लोग मानते हैं कि प्रधानमंत्री भले हमेशा सही कदम नहीं उठाते हों, लेकिन उनकी मंशा सही रहती है और वे निजी हित के बजाय देश के कल्याण के लिए परिश्रम करते हैं। तीसरे, लोकनीति-सीएसडीएस सर्वेक्षण के परिणाम बताते हैं कि लोगों में बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार को लेकर बेचैनी जरूर है, लेकिन हाल ही में हुए विभिन्न विधानसभा चुनावों में इन मुद्दों का कोई प्रभाव नहीं नजर आया है। इसके बजाय वोटरों पर सबसे ज्यादा प्रभाव राष्ट्रवाद के मसले का पड़ा है। वास्तव में हाल में जितने विपक्षी नेताओं पर भ्रष्टाचार के आरोप लगे हैं और उन्हें जेल भेजा गया है, उसमें अगर नरेंद्र मोदी के अदाणी से मेलजोल के आरोप प्रमाणित भी होते हैं, तो भी वे स्वयं को दूसरों की तुलना में बेहतर स्थिति में ही पाएंगे। अगर विपक्षी दल 2024 में भ्रष्टाचार को एक अहम मसला बनाने जा रहे हैं तो इससे भाजपा को चिंतित होने की कोई जरूरत नहीं मालूम होती है।

जिन 13 राज्यों में हुए चुनावों के आधार पर सर्वेक्षण के निष्कर्ष निकाले गए हैं, उनमें से 12 ऐसे थे, जिनके मतदाताओं ने कहा कि उनके राज्य में भ्रष्टाचार पहले की तुलना में बढ़ा है। इनमें से छह राज्यों में सत्तारूढ़ पार्टी ने फिर जीत दर्ज की। इनमें उन राज्यों के वोटर शामिल थे, जिनका मानना था कि भ्रष्टाचार पहले की तुलना में बढ़ा है। अधिकतर मतदाताओं की चिंता विकास सम्बंधी कार्यों को लेकर थी। लेकिन भ्रष्टाचार और विकास के बिंदु पर चिंता जताने के बावजूद वोटरों ने सत्तारूढ़ दल के विरुद्ध वोट नहीं दिया। 1989 में बोफोर्स घोटाले की सुई राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ी थी और 2014 में ऐसी धारणा निर्मित हो गई थी कि यूपीए सरकार गले-गले तक भ्रष्टाचार में डूबी हुई है। इन दोनों ही अवसरों पर वोटरों ने केंद्र में सरकार बदल दी। लेकिन आज दूर-दूर तक वैसे हालात नजर नहीं आ रहे हैं।

दैनिक जागरण

Date:23-03-23

चिंता बढ़ाती रूस-चीन की निकटता

हर्ष वी. पंत, (लेखक आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में रणनीतिक अध्ययन कार्यक्रम के निदेशक हैं)

हर एक गुजरते हुए दिन के साथ दुनिया और ध्रुवीकृत होती जा रही है। इसी सप्ताह चीनी राष्ट्रपति शी चिनफिंग के रूस दौरे और जापानी प्रधानमंत्री फुमियो किशिदा की यूक्रेन यात्रा से यह ध्रुवीकरण और मुखरता से रेखांकित होता है। किशिदा के दौरे का उद्देश्य जहां यूक्रेन के साथ एकजुटता प्रदर्शित करना था तो चीनी राष्ट्रपति एक तीर से दो निशाने लगाने के मकसद से मास्को पहुंचे। एक तो उनकी मंशा रूस और यूक्रेन के बीच शांति के प्रयासों में मध्यस्थ की भूमिका में दिखने की रही, लेकिन इससे भी बढ़कर उनका लक्ष्य चीन-रूस संबंधों को और मजबूती प्रदान करना रहा। आज बड़े स्तर पर शक्ति का ध्रुवीकरण हो रहा है। यह एक व्यापक आधारभूत वास्तविकता है जो नए उभरते वैश्विक ढांचे को आकार दे रही है। इसमें भारत सहित सभी देशों के लिए भविष्य की दृष्टि से चिंता के संकेत छिपे हैं।

जहां तक रूस और यूक्रेन के बीच शांति के प्रयासों की बात है तो बीते दिनों सऊदी अरब और ईरान के बीच शांति कराने में मिली सफलता से उत्साहित चीन पश्चिम एशिया के बाद इस सिलसिले को यूरेशिया में भी दोहराकर वैश्विक नेतृत्व के मोर्चे पर अपनी साख और दावे को मजबूती देना चाहता है। वैसे, पश्चिम एशिया की राजनीति में अमेरिका की वजह से एक रिक्तता की स्थिति आई है और रियाद-तेहरान समझौता मुख्य रूप से कूटनीतिक रिश्तों को फिर से शुरू करने पर ही केंद्रित है। इसके उलट रूस-यूक्रेन के बीच किसी तरह के शांति समझौते की गुंजाइश फिलहाल नहीं दिखती। हालांकि, पुतिन ने इतना जरूर कहा है कि चीनी शांति प्रस्ताव के कई प्रविधान ऐसे हैं, जिन्हें यूक्रेन के साथ किसी संघर्ष विराम का आधार बनाया जा सकता है, लेकिन यह पश्चिमी देशों और कीव पर निर्भर करेगा कि क्या वे इसके लिए तैयार होंगे। उन्होंने यह भी कहा कि कोई भी शांति वार्ता रणभूमि की वास्तविकता से निर्धारित होगी। अभी तक दोनों ही पक्षों को ऐसा नहीं लगता कि वार्ता की मेज पर आने से उनके लिए कोई लाभ की स्थिति बनेगी। दूसरी ओर गत माह 12 सूत्रीय शांति प्रस्ताव तैयार करने के बावजूद यूक्रेन में शांति चीन की प्राथमिकता नहीं दिखती।

चीनी राष्ट्रपति के रूप में अप्रत्याशित रूप से तीसरा कार्यकाल मिलने के बाद शी पहली बार किसी विदेशी दौरे पर रूस गए, जो विश्व के दो सबसे शक्तिशाली तानाशाह देशों के बीच रिश्तों की मजबूती को दर्शाता है। दोनों देशों को 'रणनीतिक साझेदार' और 'महान पड़ोसी शक्तियां' बताते हुए शी ने कहा कि चीनी और रूसी रिश्ते 'द्विपक्षीय संवाद की

परिधि से परे' जा चुके हैं। दोनों नेताओं की जुगलबंदी से यही संकेत मिले कि वित्त, परिवहन-ढुलाई एवं ऊर्जा के क्षेत्र में द्विपक्षीय रिश्ते और परवान चढ़ने जा रहे हैं। खासतौर से शी ने ऊर्जा, कच्चा माल और इलेक्ट्रानिक्स जैसे क्षेत्रों पर जोर देने की बात कही। असल में कई मोर्चों पर पश्चिमी देशों द्वारा अलग-थलग कर दिए गए रूस और चीन एक दूसरे के साथ सहयोग बढ़ाकर उससे हुए नुकसान की कुछ हद तक भरपाई कर सकते हैं। व्यापार और आर्थिकी के अतिरिक्त विश्व में बदलता शक्ति संतुलन भी दोनों देशों के रिश्तों की दशा-दिशा तय कर रहा है। इसके चलते पश्चिम में रूस और चीन के बीच मजबूत होते रक्षा संबंधों पर चिंता भी जताई जा रही है। नाटो के महासचिव ने हाल में चीन को चेतावनी दी थी कि वह रूस को घातक हथियार न उपलब्ध कराए। जो भी हो, अब इन दोनों देशों के रिश्तों में रूस कनिष्ठ सहयोगी की भूमिका में आ गया है। कुछ साल पहले तक इस साझेदारी में रणनीतिक उत्साह का अभाव था। अब कुछ पश्चिमी नीतियों का पहलू कहें या पुतिन और शी के अपने-अपने विदेशी एजेंडे पर टिके रहने का दांव, इस समय चीन-रूस गठजोड़ शीत युद्ध के उपरांत भू-राजनीति को नए सिरे से आकार देने वाली एक धुरी के रूप में उभरता दिख रहा है। वहीं, आर्थिक रूप से नाजुक और व्यापक स्तर पर अलग-थलग पड़े रूस की अपनी भू-राजनीतिक आकांक्षाओं के लिए चीन पर निर्भरता कहीं अधिक बढ़ गई है। जबकि अमेरिकी प्रभुत्व को चुनौती देने के लिए बीजिंग के लिए मास्को की अपनी उपयोगिता है। हालांकि, पश्चिम में चीन के जितने बड़े पैमाने पर आर्थिक हित जुड़े हैं, उसे देखते हुए वह किसी प्रकार के सैन्य टकराव में शामिल होने से परहेज ही करेगा।

जहां दुनिया ने देखा कि पुतिन ने अपने मित्र के स्वागत में लाल कालीन बिछवाया, वहीं चीनी नेता ने शायद ही किसी संभावित सैन्य सहयोग के संकेत दिए। हालांकि, अमेरिका के साथ बढ़ते टकराव विशेषकर हिंद-प्रशांत क्षेत्र में बनती ऐसी स्थिति को देखते हुए शी को पुतिन की आवश्यकता महसूस होती है, लेकिन रूस के साथ ठोस सामरिक सहयोग यूरोप के साथ रिश्तों में बीजिंग के लिए नकारात्मकता का संदेश देगा। ऐसे में शी के लिए यह बड़ी सावधानी से संतुलन साधने की कवायद है, जिसमें पुतिन को अपने पाले में लाकर वह उभरते शक्ति संतुलन का पलड़ा अपने पक्ष में कर सकें। यह सब ऐसे समय में हो रहा है जब शी अमेरिका को खलनायक के रूप में चित्रित करने और चीन को जटिल समस्याओं का समाधान करने वाले देश के रूप में प्रस्तुत करने में लगे हैं। शी के रूस दौरे से पहले ही चीनी विदेशी मंत्री ने अपने यूक्रेनी समकक्ष के साथ वार्ता की थी। ऐसा अनुमान है कि मास्को से वापसी के बाद शी यूक्रेनी राष्ट्रपति जेलेंस्की से फोन पर बात करेंगे।

ऐसी कूटनीतिक कवायद से न तो यूक्रेन युद्ध का कोई समाधान निकलने से रहा और न ही इसमें ऐसी कोई मंशा दिखती है। शी का मुख्य उद्देश्य तो हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अपने अनुकूल शक्ति संतुलन साधना है और पुतिन को कनिष्ठ साझेदार बनाना है, ताकि पश्चिम का ध्यान भटका सकें कि वह तो उनकी सहूलियत के साझेदार हैं। चीन और रूस की इस आकार लेती धुरी के भारतीय सामरिक समीकरणों की दृष्टि से भी गहरे निहितार्थ हैं। भारतीय सामरिक बिरादरी अभी तक इस मुद्दे पर बहस से बचती आई है। यदि नई दिल्ली उभरते वैश्विक शक्ति संतुलन का अपने पक्ष में अधिकाधिक लाभ उठाना चाहती है तो उसे यह रुख-रवैया बदलना होगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:23-03-23

बंधुता, समृद्धि और ध्रुवीकरण

रथिन रॉय, (लेखक ओडीआई, लंदन के प्रबंध निदेशक हैं)

भारत में अंतरसरकारी राजकोषीय रिश्तों का अब तक का एक अत्यंत सुखद और बंधुता दर्शाने वाला गुण रहा है-राज्यों के बीच करों के समांतर बंटवारे की दिशा में होने वाली प्रगति।

हर पांच वर्ष पर नियुक्त होने वाले वित्त आयोगों की अनुशंसा ने दोनों तरह के बंटवारे की अनुशंसा की है: केंद्र और राज्यों के बीच बंटवारा और राज्यों के बीच आपसी बंटवारा। राज्यों के बीच के राजस्व बंटवारे को एक फॉर्मूले से तय किया जाता है। इस फॉर्मूले में सबसे अधिक जोर 'आय में अंतर' के मानक पर दिया जाता है। यह राज्य की प्रतिव्यक्ति आय के उलट होती है। ऐसे में प्रति व्यक्ति आय जितनी कम होगी, राज्य को उतनी अधिक हिस्सेदारी मिलेगी।

सन 1991 के बाद से अब तक के सभी वित्त आयोगों की अनुशंसाओं में इस मानक को 48 से 60 फीसदी भार मिला। इसलिए समांतर बंटवारा बड़े पैमाने पर पुनर्वितरण है और उल्लेखनीय बात यह है कि अब तक किसी भी राज्य ने इसे लेकर कोई आपत्ति नहीं जताई है। इसी वजह से देश के सबसे गरीब राज्यों-बिहार और उत्तर प्रदेश को राज्यों को दिए जाने वाले कर में सबसे अधिक हिस्सेदारी प्राप्त होती है। अगर आबादी ही एक मात्र मानक होती तो उन्हें वर्तमान की तुलना में काफी कम हिस्सेदारी मिलती। उस स्थिति में शायद महाराष्ट्र को बिहार से अधिक हिस्सेदारी प्राप्त होती।

परंतु अमीर और गरीब राज्यों के रिश्ते को लेकर चलने वाली बहस में हाल ही में बदलाव आया है। इस बदलाव का सबसे वाकपटु और भावपूर्ण सार तमिलनाडु के वित्त मंत्री पलनिवेल त्यागराजन ने अपने वक्तव्य में इस तरह व्यक्त किया, 'गरीब राज्यों को दिए जाने वाले पैसे का क्या होता है? उस पैसे से विकास क्यों नहीं हो पा रहा है? हमें इस पैसे को लेकर शिकायत नहीं है बल्कि शिकायत प्रगति को लेकर है।'

तीन दशक पहले यह दलील देना संभव था कि कुछ अप्रत्यक्ष करों को छोड़कर अधिकांश करों को उन स्थानों पर आय और खपत में बांटा नहीं जा सकता है जहां वे संग्रहित हुए। मुंबई में बनी एक फिल्म पर कर्नाटक में कर लग सकता है। मुंबई-दिल्ली उड़ान पर लगने वाला ईंधन कर उस जगह पर लगेगा जहां विमानन कंपनी विमान में ईंधन भरवाना चाहे। लेकिन सभी यात्रियों को अपने किराये में कर चुकाना होगा फिर चाहे वे कहीं से भी आते हों। एक बहुराष्ट्रीय कंपनी जो मुंबई में अपने मुनाफे की घोषणा करती है वह पूरे देश में बिक्री करके आय अर्जित कर रही होगी।

ये दलीलें आज भी वजन रखती हैं लेकिन दुख की बात है कि उतना नहीं जितना 30 वर्ष पहले रखती थीं। आज उत्तर प्रदेश, नेपाल से गरीब है और प्रति व्यक्ति आय के मामले में तमिलनाडु उतना ही अमीर है जितना कि इंडोनेशिया। इसका अर्थ यह हुआ कि इनमें खपत और आय कर का आधार पर कहीं अधिक बड़ा है। विभिन्न क्षेत्रों में असमानता जितनी अधिक होगी, लोगों को यह समझाना उतना ही मुश्किल होगा कि कर आधार को अलग संस्था के रूप में देखने की आवश्यकता है।

अमीर और गरीब राज्यों के बीच की असमानता लगभग हर आर्थिक पहलू में देखी जा सकती है। आय, परिसंपत्तियां और मनमानी क्रय शक्ति अमीर देशों में अधिक है। औपचारिक रोजगार और उच्च मूल्य वाले रोजगार भी उनके यहां अधिक हैं। यही वजह है कि सरकारी नौकरियों की भूख देश के गरीब राज्यों में कहीं अधिक है। विदेशी निवेश की आवक भी अमीर राज्यों में अधिक होती है। उनके यहां स्वास्थ्य सुविधाएं बेहतर हैं, साक्षरता दर अधिक है और सार्वजनिक सेवाएं भी गरीब राज्यों की तुलना में बेहतर हैं। ऐसे में त्यागराजन का सवाल उचित है। अगर बीते तीन दशकों के दौरान अमीर और गरीब राज्यों के बीच असमानता बढ़ने के बजाय कम हुई होती तो यह सवाल पैदा ही न होता। लेकिन तमाम बड़ी-बड़ी बातों से उलट समय के साथ असमानता में लगातार इजाफा हुआ है।

राजनीतिक मोर्चे पर भी कमियां हैं। देश के उत्तरी इलाके में स्थित राज्यों में लंबे समय से राजनीतिक ध्रुवीकरण की राजनीति हो रही है। दक्षिण के राज्यों के उलट उत्तर में यह राजनीतिक बहस में बहुत अहम स्थान रखती है। अधिकांश राजनीतिक अभिव्यक्तियां जाति और बहुसंख्यक धार्मिकता के इर्दगिर्द होती हैं। वहां चुनाव लड़ने और जीतने के मामलों में यही केंद्रीय बहस रहती है। आर्थिक कल्याण, समृद्धि और बेहतर दुनिया की साझा तलाश के बारे में हमारे चुनावों में कोई खास बात नहीं की जाती है। ध्रुवीकरण की सफलता के कारण ऐसी किसी पेशकश का दबाव भी नहीं है। प्रतिष्ठित राष्ट्रीय नेताओं और स्वतंत्रता सेनानियों की प्रतिष्ठा को धूल-धूसरित करते हुए मुस्लिमों को सताना, साथी देशवासियों को देशद्रोही ठहराना, असहमत लोगों को दंडित करना, जेल में डालना आदि तमाम काम ध्रुवीकरण को ही दर्शाने वाले हैं। यह जितना अधिक कारगर होगा, इसका उपयोग उतना ही अधिक आकर्षक होता जाएगा।

परंतु ध्रुवीकरण अथवा विभाजन की राजनीति पर किसी का एकाधिकार नहीं है। जब ऐसी घटनाएं अधिक घनीभूत हो जाती हैं और राजनीतिक दलों में इन्हें लेकर एक किस्म की होड़ या प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाती है तो पूरा राजनीतिक प्रतिष्ठान ही सवालों के घेरे में आ जाता है। संविधान के अनुच्छेद एक में कहा गया है कि इंडिया जो भारत है वह राज्यों का एक संघ है। इस पर सवाल उठाते हुए देश के दक्षिणी राज्यों पर आधिकारिक 'राष्ट्रीय' हिंदी भाषा को थोपना, बहुसंख्यक एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए परिसीमन का इस्तेमाल, एकल संस्कृति थोपने को लेकर बहस आदि सभी विवाद उत्पन्न करते हैं और विभिन्न प्रकार के ध्रुवीकरण को जन्म देते हैं। कोई भी बुद्धिमान पर्यवेक्षक आसानी से यह समझ सकता है कि हमारे यहां ऐसी कोई राजनीतिक योजना नहीं है जो देश के हिंदीभाषी क्षेत्रों में रोजगारपरक वृद्धि लाए और हालात में तेजी से बदलाव लाने में सक्षम हो। ऐसी स्थिति में बंधुता को लेकर प्रश्नचिह्न लगना तय है।

ध्रुवीकरण की बहुत बड़ी कीमत चुकानी होती है। आर्थिक ठहराव तो इसकी अग्रिम कीमत भी है। अगर आर्थिक हालात को तत्काल सुधारने के प्रयास नहीं किए गए तो स्थितियां और तेजी से बिगड़ेंगी। आवश्यकता इस बात की है कि ध्रुवीकरण को त्यागकर समावेशी आर्थिक एजेंडे पर आगे बढ़ा जाए जो देश के गरीब इलाकों में समृद्धि लाने पर केंद्रित हो। यदि ऐसा नहीं किया गया तो चुनाव तो जीते जा सकेंगे लेकिन देश के सफल अस्तित्व के मूल में जो बंधुता है उसे अपूरणीय क्षति पहुंचेगी।

जनसत्ता

Date:23-03-23

अभाव की परतें

संपादकीय

इसमें कोई दो राय नहीं कि मौजूदा दौर में दुनिया भर में विकास और अर्थव्यवस्था के मामले में नए अध्याय रचे जा रहे हैं, विज्ञान के मोर्चे पर अहम उपलब्धियों की वजह से बहुत सारे लोग अपनी जिंदगी को बेहतर बना रहे हैं। मगर इससे बड़ी विडंबना और क्या होगी कि इक्कीसवीं सदी के इसी चमकते दौर में आज भी विश्व की एक चौथाई से ज्यादा आबादी को पीने के लिए सुरक्षित पानी नहीं मिल पा रहा है। इसके समांतर साफ-सफाई के वैश्विक नारे बनने के दौर में सच यह भी है कि करीब आधी आबादी की पहुंच भी स्वच्छता तक नहीं है। गौरतलब है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जल पर पहले महत्त्वपूर्ण सम्मेलन के मौके पर संयुक्त राष्ट्र की ओर से मंगलवार को जारी एक रिपोर्ट में बताया गया है कि दुनिया की छब्बीस फीसद आबादी को सुरक्षित पेयजल नहीं मिल पाता है, जबकि बुनियादी स्वच्छता तक छियालीस फीसद लोगों की पहुंच नहीं है। अंदाजा लगाया जा सकता है कि जिन देशों में ऐसे हालात से दो-चार लोग किसी तरह अपनी जिंदगी गुजार रहे हैं, वहां नीतियां बनाने और उन पर अमल को लेकर किस स्तर तक लापरवाही बरती जाती है।

संयुक्त राष्ट्र की इसी रिपोर्ट में यह बताया गया है कि पिछले चार दशकों में विश्व स्तर पर पानी का इस्तेमाल लगभग एक फीसद प्रति वर्ष की दर से बढ़ रहा है। मगर एक हकीकत यह है कि धरती पर संसाधनों की एक सीमा है और अगर पानी के उपयोग में बढ़ोतरी की यही रफ्तार रही तो आने वाले वक्त में खड़ी होने वाली समस्या की बस कल्पना की जा सकती है। अभी ही स्थिति यह है कि एक ओर विकासशील और गरीब देशों में दूरदराज के इलाकों में रहने वाली एक बड़ी आबादी को पेयजल के लिए काफी जद्दोजहद करना पड़ता है, वहीं शहरों में पानी एक तरह से बाजार के हवाले हो चुका है। अब तक पीने के पानी पर प्राकृतिक अधिकार माना जाता रहा है, मगर सच यह है कि अब दुनिया की ज्यादातर आबादी या तो स्वच्छ पेयजल से वंचित है या फिर बिना आर्थिक कीमत चुकाए लोग अपनी प्यास तक नहीं बुझा सकते। इसी तरह, वैश्विक स्तर पर एक नारे के रूप में स्वच्छता के प्रचार के बावजूद आज भी छियालीस फीसद लोग अगर स्वच्छ माहौल से बाहर हैं, तो यह किसकी नाकामी का सबूत है ?

निश्चित रूप से दुनिया भर में पिछले कई दशकों से अलग-अलग देशों से लेकर संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों की ओर से विकास केंद्रित सम्मेलनों, आयोजनों और नीतिगत पहलकदमियों के बरक्स यह एक विरोधाभासी स्थिति है कि इतनी बड़ी तादाद में लोगों को पीने का साफ पानी भी हासिल नहीं हो पा रहा। जबकि स्वच्छ पेयजल स्वस्थ जीवन के लिए पहली जरूरत है। खुद संयुक्त राष्ट्र की आमसभा में 2010 में ही अपनाए गए प्रस्ताव में पीने के साफ पानी और स्वच्छता को मानवाधिकार का दर्जा दिया गया था। सवाल है कि राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होते रहे सम्मेलनों के निष्कर्ष कितने जमीन पर उतर सके और अगर ऐसा नहीं हो सका तो इसके लिए संबंधित पक्षों ने क्या किया ! आधुनिक तकनीकी की दुनिया में तमाम प्रयोगों और आविष्कारों के बावजूद हालत यह है कि उपयोग किए जा चुके या फिर समुद्री पानी को पीने लायक बनाने और उसे साधारण लोगों तक पहुंचा पाने के मामले में अपेक्षित कामयाबी हासिल नहीं की जा सकी है। बाकी मामलों की तरह स्वच्छ पेजयल का बाजार निजी क्षेत्रों को सौंप दिया जाता

है, मगर सवाल है कि संयुक्त राष्ट्र की ओर से ही घोषित पेयजल और स्वच्छता का मानवाधिकार अपने नागरिकों को दिलाने को लेकर सरकारों की क्या जिम्मेदारी है!

Live हिन्दुस्तान .com

Date:23-03-23

न्याय और समता

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय के कुछ फैसले ऐसे होते हैं, जो व्यावहारिक रूप से व्यापक और अनुकरणीय होते हैं। एक ही मुकदमे में न्यायालय ने दो ऐसी टिप्पणियां की हैं, जिन्हें याद रखा जाएगा। पहली टिप्पणी का सार यह है कि अदालतों को लड़का-लड़की में भेद नहीं करना चाहिए। दूसरी टिप्पणी, किसी अपराधी को फांसी की सजा तभी सुनाई जाए, जब उसमें सुधार की कोई संभावना नहीं हो।देश के प्रधान न्यायाधीश डी वाई चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति हिमा कोहली व न्यायमूर्ति पी एस नरसिम्हा ने सात साल के एक बच्चे के अपहरण व हत्या के दोषी याचिकाकर्ता सुंदरराजन की मौत की सजा को कम करते हुए ये टिप्पणियां की हैं। दोषी सुंदरराजन ने जुलाई 2009 में पीड़ित का स्कूल से लौटते समय अपहरण कर लिया था। निचली अदालतों में दोष सिद्ध हो चुका था, फिर भी अपराधी ने बचने के लिए सर्वोच्च न्यायालय में अपील की थी। अदालत ने दोषी की सजा कम की है, उसे फांसी से बचाया है, तो उसके पर्याप्त कारण भी गिनाए हैं।

बहरहाल, बात पहले लिंगभेद की। यह बात गौर करने की है कि सर्वोच्च न्यायालय ने इसी मामले में पहले लिंगभेद प्रेरित टिप्पणी की थी और अब सर्वोच्च न्यायालय ने ही सुधार की कोशिश की है। प्रधान न्यायाधीश के नेतृत्व वाली पीठ ने दोषसिद्धि के खिलाफ की गई अपील पर फैसला करते समय न्यायालय द्वारा पितृसत्तात्मक भाषा के इस्तेमाल पर आपत्ति जताई है। अदालत ने पहले टिप्पणी करते हुए इशारा किया था कि फिरौती के लिए विशेष बच्चे के अपहरण का विकल्प सुनियोजित था। मृतक के माता-पिता के चार बच्चे थे - तीन बेटियां और एक बेटा। इकलौते बेटे का अपहरण उसके माता-पिता के मन में अधिकतम भय उत्पन्न करने के लिए था। जान-बूझकर इकलौते पुत्र की हत्या करना, मृतक के माता-पिता के लिए गंभीर परिणाम होता है, पुत्र होता, तो परिवार के वंश को आगे बढ़ाता। ऐसी भाषा पर प्रधान न्यायाधीश ने रोष जताया है, तो यह स्वागतयोग्य है। पितृसत्ता या लिंगभेद के लिए संविधान में भी कोई जगह नहीं है, फिर अदालती व्यवहार व भाषा में यह भेद तो अचंभित करता है। अदालती फैसलों के ऐसे कई उदाहरण मिल जाएंगे, जिनमें लिंगभेद हावी दिखा है। सर्वोच्च न्यायालय के ताजा और सुखद टिप्पणी का असर सभी निचली अदालतों तक पहुंचे, तो भारत में समता और न्याय की बुनियाद मजबूत होगी। वाकई, अदालत के लिए यह मायने नहीं होना चाहिए कि कोई लड़का है या लड़की। अपराध सिर्फ अपराध है। पितृसत्तात्मक मूल्यों को व्यावहारिक रूप से अलविदा कहने का कार्य न्याय के मंदिरों में ही संपन्न होना चाहिए।

अब बात अधिकतम सजा की। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि किसी अपराधी को केवल अपराध की गंभीर प्रकृति के आधार पर मौत की सजा नहीं दी जा सकती। यह सजा तभी दी जाए, जब अपराधी में सुधार की कोई संभावना न हो। अदालतों को सुधार और पुनर्वास पर भी विचार करना चाहिए। इस मुकदमे में दोषी के सुधार की संभावना साफ दिखती है। जेल में उसका आचरण सही है, उसने डिप्लोमा भी किया है, अपराध के वक्त उसकी उम्र 23 वर्ष थी, इसलिए यह दुर्लभतम मामला नहीं है। कुछ उदारता दिखाने के बावजूद अदालत ने स्पष्ट कर दिया है कि याचिकाकर्ता या दोषी 20 साल के कारावास को पूरा करने तक किसी भी प्रकार की रियायत का हकदार नहीं होगा। बेशक, समग्रता में ये फैसले मिसाल रहेंगे।